



अन्तरंग राक्षस

मनोज दास

वो सो रही थी... मेरी नन्हीं-सी परी, मुझसे यह वादा लेकर कि उसके लिए एक छोटा, असली का बन्दर जल्द-से-जल्द लेना होगा, क्योंकि वो पहली बार अपनी मां के बिना घर से शहर आई थी। मुझे याद आया कि

मेरे बंगले पर चौकीदार ने उस जाति का एक शांत प्राणी पाला है, तो मैंने उसकी शर्त मान ली। मां के बिना एक हफ्ता रहने के लिए उसने जो मुआवजा मांगा वो जायज़ ही लगा।

रेलगाड़ी के डिब्बे के एकांत में

नीले बल्ब से आ रही फीकी-सी रोशनी और बीच-बीच में खिड़की से बहकर अंदर आ रही चांदनी, मेरी सोई हुई बिटिया के इर्द-गिर्द परियों के देश का सा आसमानी जादू बिखेर रही थी। मैं उसे देखता रहा, फिर चांद की ओर देखा। मुझे सपना देखने की भी ज़रूरत नहीं थी क्योंकि सपनों ने खुद मुझे चहुं ओर से घेर लिया था। मैं ऊपर की बर्थ पर जाकर सो सकता था, पर गया नहीं, बल्कि इस डर का लुत्फ उठाया कि वो सीट से नीचे गिर सकती है और इसलिए मेरा उसके पास बैठना ज़रूरी है।

गाड़ी, एक के बाद एक, मुफ़्सल स्टेशनों से गुज़र रही थी, एकाध सवारी को समेटते हुए, गड़गड़ाहट के शोर को बीच-बीच में गांव की चहल-पहल से तोड़ते हुए।

इस तरह गर्मी की इस रात की ये घड़ियां इसी लय में गुज़रती रहीं। फिर हम एक ऐसे स्टेशन पर पहुंचे जिसे स्टेशन कहना ही बहुत वाजिब नहीं होगा। स्टेशन मास्टर के कमरे पर भी छत नहीं के बराबर थी। वेटिंग रूम के नाम पर टिन के एक छप्पर के पास खूब सारे घने पेड़ थे। पर आप मानेंगे नहीं कि पलक झपकते ही इस जगह से इतने सारे लोग उमड़ आए और पलभर में गाड़ी में चढ़ने की धक्का-मुक्की में उन्होंने गाड़ी को



हिलाकर रख दिया।

मेरे दरवाज़े पर भी मुक्कों की मार पड़ी। पर जल्द ही ट्रेन चल पड़ी और मुझे अभी भी आधी ट्रेन के बराबर भीड़ नज़रों से ओझल होती हुई दिख रही थी। बची हुई भीड़ जो इस विशालकाय दैत्य को गुम होते देख रही थी स्तब्ध थी, क्योंकि वो इसे

काबू नहीं कर पाई थी।

एक बार फिर मैंने अपनी बेटी के पास रखे सिरहाने को ठीक किया और ऊपर की बर्थ पर चढ़ने लगा। पर ट्रेन के मुड़ते ही खिड़की में से एक परछाईं दिखाई। ध्यान से देखने पर समझ में आया कि कांच के दूसरी ओर एक बड़ा-सा, दढ़ियल आदमी चुपचाप लटका हुआ था। मुझे गुस्सा आया और मैंने तय कर लिया कि वो जहां है वही जगह उसके लिए सही है। पर मुझे ऐसा आभास हुआ कि वो सो रहा था! उसे झपकी लेते देख मेरे मन में उसे लेकर जो थोड़ा-बहुत संदेह था, गायब हो गया। भला चोर इस तरह सो कैसे सकता है!

मैंने कांच की खिड़की खोली और उसे आवाज़ दी। खिले हुए चांद की तरह उसके चेहरे पर भी एक मुस्कान खिल आई। “मैं बहुत मामूली आदमी हूं, हुज़ूर”, उसने कहा। “आप वाकई बहादुर हैं जनाब, जो ऐसे लटक कर सफर कर रहे हैं और लटकते हुए सो भी पा रहे हैं”, मैंने उत्तर दिया, दरवाज़ा खोला और उसे अंदर बुलाया।

शिष्टाचार-वश थोड़ा झिझकने के बाद वह अंदर आया और नीचे बैठ गया। उसने बताया कि किसी बड़े त्यूहार के कारण पिछले स्टेशन पर इतनी भीड़ थी। जो लोग इस त्यूहार में शामिल होने नदी पार करके गए थे, उन्हें वापस लौटते वक्त नदी में पूर

आ जाने के कारण नाव से न जाकर, रेल से सफर करना पड़ रहा था।

“यह फर्स्ट क्लास है। आपके पास तो थर्ड क्लास का टिकट होगा, न? पर आपकी मंज़िल आने तक आप यहां बैठ सकते हैं”, मैंने अनुकंपा दिखाते हुए कहा।

इस पर उस अजनबी ने बताया कि वो तो एक घुमक्कड़ है जो अपने कुल जमा सामान की पोटली साथ में लिए जगह-जगह भटकता रहता है — उसके पास न तो टिकट थी, न ही उसकी कोई मंज़िल।

मैंने सोने का ख्याल छोड़ दिया, पर गाड़ी की आवाज़ की एकरस नीरसता और हिचकोलों ने मुझे कुछ देर के लिए सुला दिया।

एक तेज़ आवाज़ ने मेरी नींद में खलल डाली। मैं हकबका कर बैठ गया और शोर का स्रोत खोजने लगा। मेरी बेटी अभी भी सो रही थी। शोर की वजह वही बूढ़ा आदमी था। वह बांसुरी बजा रहा था।

बांसुरी बजाकर वो कोई शैतानी नहीं कर रहा था, पर पता नहीं क्यों मुझे बहुत गुस्सा आया। उस समय वो दुष्टता और कृतघ्नता की प्रतिमा लग रहा था। मैं जानता था कि उस आवाज़ से परेशान नहीं होना चाहिए। लेकिन कई घंटों की मेहनत के बाद मेरी बेटी सोई थी, यह बात उस आदमी के



लिए बेमानी है, यह सोच कर मैं जोर से चिल्लाया, “बंद करो।”

उसने मुझे हैरानगी से देखा, और बिना कुछ कहे, बांसुरी को अपने पुराने से झोले में डालकर खड़ा होने लगा। उस वक्त ट्रेन एक और स्टेशन पर रुकी हुई थी। उसने दरवाजा खोला, चुपचाप मुझे सलाम किया और नीचे उतर गया।

मैं दरवाजा बंद करके मुड़ा, तो मुझे यह देखकर दुख हुआ कि मेरी बेटी उठ गई थी और बैठने की कोशिश कर रही थी। मैंने लाइट जलाई।

“क्यों उठ गया मेरा बेटा?”, मैंने हल्के से पूछा। पहले तो वह चुप रही फिर जैसे ही मैं उसके पास बैठा, मुझे पकड़कर कहने लगी, “पापा, मैं बहुत अच्छा सपना देख रही थी।”

“यह तो अच्छी बात है। क्या देखा सपने में?”

अब उसके आंसू टपकने लगे, “मैं एक बहुत सुन्दर बगीचे में घूम रही थी। उसमें खूब सारे फूल और परियां थीं। और उन सबके बीच एक बहुत अच्छा बच्चा था। उसने मुझे बांसुरी बजाकर सुनाई। पर फिर, पता है...”

उसके मुंह से बोल नहीं निकल रहे थे। मैंने उसके आंसू पोंछे। “फिर क्या हुआ?” मैंने पूछा।

“फिर कोई एकदम से उस पर बरस पड़ा और चिल्लाया। एक बड़ा-सा, गंदा-सा राक्षस था। उसने बांसुरी बंद कर दी। चारों तरफ गहरे बादल

छा गए। फिर क्या हुआ, मुझे नहीं पता।” मेरी बेटी ने बताया।

मैंने खिड़की से बाहर देखा। सोए हुए खेत-खलिहान चांदनी से ढके थे। पर मैं एक अंधेरे, एक राक्षस को महसूस कर रहा — शायद अंदर कहीं।

मनोज दास — उड़िया भाषा के जाने माने कथाकार हैं। साथ ही अंग्रेजी में भी लिखते हैं।

अनुवाद — शिवानी बजाज। शिवानी दिल्ली में रहती हैं और बच्चों की शिक्षा पर काम कर रही हैं।

समस्त चित्र: मनोज कुलकर्णी। ललित कलाओं में गहरी रुचि रखते हैं। भोपाल में निवास।

एक विशेष सूचना

संदर्भ का यह अंक संयुक्तांक है। लेकिन इसे एक अंक के बराबर ही माना जा रहा है इसलिए हमारे वार्षिक सदस्यों को पूरे अंक मिलेंगे यानी यदि आपकी सदस्यता 44वें अंक में खत्म होने वाली है तो सदस्यता 44वें अंक तक बरकरार रहेगी।

संगम

सदस्यता के लिए

सामान्य वार्षिक चन्दा 150 रुपए
सदस्य के ग्राहकों के लिए 125 रुपए